हिन्दू आज भी जजिया भर रहे हैं

डॉ. शंकर शरण

8-13 अक्तूबर 2020

www.nayaindia.com

1 - केवल हिन्दू मंदिरों पर राजकीय कब्जा

डॉ. भीमराव अंबेदकर भारतीय संविधान के मुख्य निर्माता थे। यह उन्हीं का कथन है कि हमारा संविधान सेक्यूलर नहीं क्योंकि "यह विभिन्न समुदायों के बीच भेद-भाव करता है। " यह तब की बात है, जब संविधान की प्रस्तावना में छेड़-छाड़ नहीं हुई थी। बाद में तो संविधान में 'सेक्यूलर' शब्द जोड़ कर और भी घात किया गया, जिसे संविधान निर्माताओं ने विचार करके खारिज किया था। वे इस अवधारणा से बखूबी परिचित थे, इसलिए उसे यहाँ अनुचित समझा। मगर कैसी विडंबना कि 1976 ई. में एक नेहरूवादी-कम्युनिस्ट चौकड़ी ने इस शब्द को संविधान में प्रवेश करा दिया। फिर जो दूसरे जातिवादी-राष्ट्रवादी आए, उन्होंने भी 1978 ई. में इस की पुष्टि कर दी।

मगर दूसरी विबंबना उस से कम नहीं। जब संविधान को 'सेक्यूलर' घोषित कर दिया गया, उस के बाद से नीति-निर्माण को निरंतर हिन्दू-विरोधी रुझान दे दिया गया। अर्थात् सेक्यूलरिज्म अपने यूरोपीय अर्थ सभी धर्मों से दूरी या समानता नहीं, बल्कि एक हिन्दू-विरोधी प्रवृत्ति, नीति सी बन गई। चूँकि सभी दलों ने इसे समर्थन दे दिया, इसलिए वह बदस्तूर चल रहा है। यद्यपि कई नेता, बुद्धिजीवी, पत्रकार और न्यायविद् इस अन्याय को महसूस करते हैं। मगर कोई कुछ नहीं करते। यह एक तीसरी विडंबना है। क्योंकि यह सब मुख्यतः हिन्दू परिवारों में जन्मे कर्णधारों, विद्वानों और न्यायाधीशों द्वारा होता है।

इन सारी गड़बड़ियों में जो बातें सब से आश्चर्यजनक लगती है, उन में हिन्दू मंदिरों पर सरकारी कब्जा सब से ऊपर है। विशेषकर हिन्दूवादी कहलाने वाले संघ-परिवार के शासनों में भी यह जारी रहना! वह भी तब, जब सुप्रीम कोर्ट ने भी साफ-साफ कहा है कि "मंदिरों का संचालन और व्यवस्था भक्तों का काम है, सरकार का नहीं।" (8 अप्रैल 2019)। सुप्रीम कोर्ट हिन्दू मंदिरों पर सरकारी कब्जे को कई बार अनुचित कह चुकी है। उस ने चिदंबरम के प्रसिद्ध नटराज मंदिर को सरकारी कब्जे से मुक्त करने का आदेश 2014 ई. में दिया था। इस के अलावा भी दो वैसे फैसले आ चुके हैं। फिर भी, जहाँ-तहाँ विभिन्न राज्य सरकारें हिन्दू मंदिरों पर कब्जा बनाए हुए हैं।

इस के विपरीत, किसी चर्च, मस्जिद या गुरुद्वारे को सरकार कभी नहीं छूती। क्या इस से बड़ा धार्मिक अन्याय, और संविधान में मौजूद 'नागरिक

समानता’ का मजाक संभव है ? जो दलीलें हिन्दू मंदिरों पर सरकारी कब्जा रखने के पक्ष में दी जाती हैं , वह सब मस्जिदों, चर्चों पर भी लागू हैं। किन्तु केवल हिन्दू मंदिरों पर कब्जा है , शेष सभी समुदाय अपने-अपने धर्म-स्थान स्वयं चलाने के लिए पूर्ण स्वतंत्र हैं!

आश्चर्य का दूसरा पहलू यह है कि स्वयं भाजपा समर्थक बौद्धिक मंदिरों को सरकारी कब्जे से मुक्त कराने के लिए संघर्ष कर रहे हैं! स्वयं डॉ. सुब्रह्मण्यम स्वामी जैसे महारथी एक भाजपा शासित राज्य में हाल में मंदिरों पर नया सरकारी कब्जा करने के विरुद्ध लड़ रहे हैं। मगर सत्ताधीशों द्वारा कोई सुनवाई नहीं। जब कि हिन्दू मंदिरों को मुक्त करने में न कोई कानून बनाना है, न कोई बजट प्रावधान करना है, न कोई विरोध-आंदोलन झेलने का डर है।

गत वर्ष पुरी के जगन्नाथ मंदिर मामले में सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस बोवड़े ने कहा, “मैं नहीं समझ पाता कि सरकारी अफसरों को क्यों मंदिर का संचालन करना चाहिए?” उन्होंने तमिलनाडु का उदाहरण भी दिया कि सरकारी नियंत्रण के दौरान अनमोल देव-मूर्तियों की चोरी की अनेक घटनाएं भी होती रही हैं। कारण यही है कि भक्तों के पास देवमूर्तियों की रक्षा का अधिकार ही नहीं है! जिन्होंने वह अधिकार ले लिया है , वे उसी तरह बेपरवाह काम करते हैं जैसे सरकारी विभाग। यही नहीं , वे धार्मिक गतिविधियों, रीतियों में भी हस्तक्षेप करते हैं। कई बार अनजाने, तो कई बार जान-बूझ कर भी। सरकारी अफसरो को तो मात्र नागरिक शासन चलाने की ट्रेनिंग मिली है। इसलिए कोई अफसर अपने वैचारिक पूर्वग्रह , अज्ञान या मतवादी कारणों से हिन्दू रीतियों के प्रति उदासीनया या दुराग्रह भी दिखा सकता है।

अभी देश भर में 4 लाख से अधिक मंदिरों पर सरकारी कब्जा है। एक भी चर्च या मस्जिद पर नहीं। अकेले आंध्र प्रदेश में 34 हजार मंदिर सरकारी कब्जे में हैं। कम से कम 15 राज्य सरकारें उन लाखों मंदिरों पर नियंत्रण रखती हैं। मंदिरों के प्रशासक नियुक्त करती है। वे जैसे ठीक समझें व्यवस्था चलाते हैं। राजनीतिक हस्तक्षेप और भ्रष्टाचार अलग। इस बीच , जैसा सरकारी विभागों में प्रायः होता है , मंदिरों के कोष और संपत्ति के मनमाने उपयोग, दुरूपयोग के समाचार आते रहते हैं। आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में

सत्ताधारी बहुते पहले से मंदिरों की आय का उपयोग 'अल्पसंख्यक' समुदायों को विविध सहायता देने में करते रहे है। यह निस्संदेह हिन्दू-विरोधी कार्य भी है। सर्वविदित है कि कुछ बाहरी धर्म हिन्दू धर्म पर प्रहार करते रहे हैं , छल-बल से हिन्दुओं का धर्मांतरण कराते रहे हैं , अपने दबदबे के इलाकों में उन्हें मारते-भगाते रहे हैं। उन्हीं समुदायों को हिन्दू मंदिरों की आय से सहायता देना सीधे-सीधे हिन्दू धर्म को चोट पहुचाने के लिए ही सहायता देना है!

इस बीच, राजकीय कब्जे वाले हिन्दू मंदिरों के पुजारी मूक दर्शक बना दिए गए हैं। उन्हें अपने ही मंदिरों की देख-रख से वंचित या बाधित कर दिय़ा गया। वे मंदिरों के पारंपरिक शैक्षिक, कला, संस्कृति या सेवा संबंधी कार्य नहीं कर सकते जो अंग्रेजों के शासन से पहले तक होते रहे थे। जैसे , पाठशालाएं, वेदशालाएं, गौशालाएं, चिकित्सालय अथवा शास्त्रीय नृत्य आयोजन, आदि।

इस प्रकार, हिन्दू मंदिर के पुजारियों की तुलना में किसी मस्जिद के ईमाम या चर्च के बिशप की सामाजिक स्थिति और मजबूत होती है। वे अपने समुदाय को समर्थ , सबल बनाने के लिए मस्जिद और चर्च का बाकायदा इस्तेमाल करने के लिए स्वतंत्र रहते हैं। यह भी तुलनात्मक रूप से हिन्दुओं की एक गंभीर हानि है, जिसे हिसाब में लेना चाहिए। विशेषकर भारत में यह हानि अब अधिक खतरनाक है।

अभी कुछ सत्ताधारी कोरोना-संकट में धन की कमी को मंदिरों में मौजूद सोना से पूरा करने की योजना बना रहे हैं या बना चुके हैं। हाल में वरिष्ठ कांग्रेस नेता और महाराष्ट्र के पूर्व मुख्य मंत्री पृथ्वीराज चौहान ने इस की खुली माँग की। कई बार मंदिरों में जमा सोने को सरकार दबाव देकर जबरन रूपयों में बदलवाती है, ताकि उस पैसे का उपयोग कर सके। इस बीच , सोने को रूपये में बदल लेने से आगे जो घाटा होगा वह अलग।

यह सब हिन्दू धर्म-समाज के विरुद्ध अनुचित, पक्षपाती जबर्दस्ती है। जो इसीलिए चल रही है क्योंकि मंदिरों पर सरकारी कब्जा है। वे किसी मस्जिद या चर्च की संपत्ति से राजकीय कोष की जरूरत पूरी करने की नहीं सोचते। मंदिरों में भक्तों द्वारा चढ़ाया गया धन सरकार द्वारा लेना संविधान के अनुच्छेद 25-26 का भी उल्लंघन है। पर कौन क्या करे , जब बाड़ ही खेत को खाने लगे!

फिर, सरकारी कब्जे के कारण मंदिरों से 13-18 प्रतिशत अनिवार्य सर्विस-टैक्स वसूला जाता है। यह भी मस्जिदों या चर्चों से नहीं वसूला जाता। कई मंदिरों में 'ऑडिट फीस', 'प्रशासन चलाने' की फीस, इन्कम टैक्स, और दूसरे तरह के टैक्स भी लगाए जाते हैं! जबकि उन्हीं मंदिरों में वेद-पाठ करने वालों, अर्चकों, आदि को जो पारंपरिक दक्षिणा आदि मिलती थी , वह नहीं मिलती या नगण्य मिलती है। किसी-किसी मंदिर की आय का लगभग 65-70 प्रतिशत तक विविध मदो में सरकार हथिया लेती है। जैसे , पलानी (तमिलनाडु) के दंडयुतपाणि स्वामी मंदिर में।

2 - मंदिरों पर राजकीय कब्जा क्यों?

पारंपरिक भारत में किसी हिन्दू राजा ने मंदिरों पर अपना अधिकार, या नियंत्रण नहीं जताया था, न कभी टैक्स वसूला था। भारतीय परंपरा में राजा को धर्म या धार्मिक कार्यों में हस्तक्षेप करने का कभी , कोई उदाहरण नहीं मिलता। वे तो सहायता व दान देते थे , न कि लेते थे जो स्वतंत्र भारत की राजसत्ता कर रही है। यह जबर्गस्ती मुगल काल के अवशेष हैं जब मंदिरों को तरह-तरह के राजकीय अत्याचार या नियंत्रण को झेलना पड़ता था।फिर अंग्रेज शासकों ने 1817 ई. में उसी तरह के कुछ नियंत्रण बनाए। उस का लाभ क्रिश्चियन मिशनरियों ने उठाया, जिन की धर्मांतरण योजनाओं को मंदिरों को कमजोर करने से कुछ मदद मिली। हालाँकि बाद में, 1863 ई. तक यहाँ अंग्रेज शासकों ने कई मंदिर हिन्दू न्यासियों को वापस भी सौंप दिए। क्योंकि उसे कुछ कारणों से इंग्लैंड में पसंद नहीं किया गया।

लेकिन फिर 1925 ई. में अंग्रेज शासकों ने भारत में धार्मिक संस्थानों पर नियंत्रण करने का कानून बनाया। लेकिन क्रिश्चियनों और मुसलमानों द्वारा तीव्र विरोध के कारण 1927 ई. में वह कानून संशोधित किया गया, और उन्हें उस कानून से छूट दे दी गई। इस प्रकार , केवल हिन्दू मंदिरों पर सरकारी नियंत्रण रखने का कानून रहा। प्रायः दक्षिण भारत में, क्योंकि विशाल, समृद्ध, संपन्न मंदिर वहीं थे। उत्तर भारत तो पिछले इस्लामी शासकों की बदौलत लगभग मंदिर-विहीन हो चुका था। यह भी ध्यातव्य है कि 'फूट डालो, राज करो' की नीति का उपाय करते हुए जहाँ 1925 ई. में हिन्दुओं को मंदिरों के संचालन से वंचित किया गया , सिखों को विशेष शक्ति-संपन्न बनाया गया। उसी साल अंग्रेजों ने सिख गुरुद्वारा एक्ट बनाकर गुरुद्वारों का संचालन एक

विशेष समूह को सौंप दिया। यह बहुत बड़ा निर्णय साबित हुआ , जिस से सिखों के एक पंथ को विशिष्ट , एकाधिकारी शक्ति प्राप्त हो गई। उस से पहले गुरुद्वारे तरह-तरह के पंथों द्वारा चलते थे।

फिर, 1935 ई. में एक और कानून बनाकर अंग्रेज सरकार ने किसी भी मंदिर को चुन कर अपने नियंत्रण में लेने का प्रावधान किया। इस तरह , अंग्रेजों ने अपने-अपने धर्म-संस्थान संचालन के लिए क्रिश्चियनों-मुसलमानों , हिन्दुओं, और सिखों के लिए तीन तरह के कानून बना दिए। ताकि अपने हितों के लिए वे सहज ही अलग-अलग महसूस करें। दुर्भाग्यवश, स्वतंत्र भारत की देशी सरकार ने भी शुरू में ही (1951 ई.) हिन्दू धार्मिक संस्थानों को अपने नियंत्रण में रख सकने का कानून बनाया। उद्देश्य यह बताया गया ताकि उस की 'सुचारू व्यवस्था' की जा सके। यह किसी ने नहीं पूछा कि वही व्यवस्था मस्जिद या चर्च की होनी क्यों अनावश्यक है ?यह व्यवस्था कैसी रही है , यह इसी से समझा जा सकता है कि 1986-2005 ई. के बीच बीस वर्षों में तमिलनाडु में मंदिरों की हजारों एकड़ जमीन 'चली' गई। अन्य हजारों एकड़ पर भी अवैध अतिक्रमण हो चुका है! यह सरकारी कब्जे की सुचारू व्यवस्था का एक नमूना है।

दूसरा नमूना यह कि अनेक मंदिरों से अनेकानेक बहुमूल्य मूर्तियाँ चोरी होती रही हैं, जो अनमोल होने के साथ-साथ देश की सांस्कृतिक विरासत भी है। किन्तु आज तक किसी को उस का जिम्मेदार नहीं ठहराया गया। किसी भी गैर-सरकारी नियंत्रण में ऐसा होना असंभव है कि इतनी बड़ी चोरियों पर किसी की जिम्मेदारी न बने। न किसी को दंड मिले! तीसरे , कई प्रतिष्ठित मंदिरों की पारंपरिक पुरोहित व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई है। सरकारी अमलों ने उस की परवाह नहीं की , या उस में हस्तक्षेप कर जाने-अनजाने बिगाड़ा। कई मामलों की तरह कांग्रेस के 'स्यूडो सेक्यूलरिज्म' और भाजपा के 'रीयल सेक्यूलरिज्म' में इस बिन्दु पर भी कोई अंतर नहीं है। राजस्थान में भाजपा राज में मंदिरों की कुछ संपत्ति पर भी कब्जा किया गया था। हरियाणा में भी समाचार हैं कि हिसार जिले के दो महत्वपूर्ण मंदिरों को कब्जे में लेने पर सत्ताधारी सोच रहे हैं।

आश्चर्य की बात यह भी है कि पिछले साल सुप्रीम कोर्ट में एटॉर्नी जेनरल वेणुगोपाल ने भी कहा था कि मंदिरों के संचालन में राज्य का कोई

हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। उन्होंने संकेत किया कि एक पंथ-निरपेक्ष राज्य प्रणाली में सरकार द्वारा मंदिरों पर नियंत्रण रखना उपयुक्त नहीं है। यह सब कहे जाने के बाद से साल भर से भी ज्यादा बीत चुका। मगर चूँकि मामला हिन्दू धर्म-समाज का है , इसीलिए इस पर हर प्रकार के सत्ताधारियों की उदासीनता एक सी है। कोर्ट में पिटीशन या कार्यपालिका को निवेदन, सब ठंढे बस्ते में पड़े रहते हैं।

प्रश्न हैः भारतीय राज्यसत्ता हिन्दुओं को अपने मंदिरों , धार्मिक संस्थाओं के संचालन करने के अधिकार से जब चाहे क्यों वंचित करती है ? जबकि मुस्लिमों, ईसाइयों की संस्थाओं पर कभी हाथ नहीं डालती। यह हिन्दू-विरोधी धार्मिक भेद-भाव नहीं तो और क्या है ? केरल से लेकर तिरूपति , काशी, बोधगया और जम्मू तक , संपूर्ण भारत के अधिकांश प्रसिद्ध हिन्दू मंदिरों पर राजकीय कब्जा कर लिया गया है। इन में हिन्दू जनता द्वारा चढ़ाए गए सालाना अरबों रूपयों का मनमाना उपयोग किया जाता है।

जिस प्रकार, चर्च, मस्जिद और दरगाह अपनी आय का अपने-अपने धार्मिक विश्वास और समुदाय को आगे बढ़ाने के लिए उपयोग करते हैं – वह अधिकार हिन्दुओं से छिना हुआ है! कई मंदिरों की आय दूसरे धर्म-समुदायों के क्रियाकलापों को बढ़ावा देने के लिए उपयोग की जाती है। आंध्र प्रदेश और कर्नाटक से हिन्दू मंदिरों की आय से मुसलमानों की हज सबसिडी देने की बात कई बार जाहिर हुई है।

यह किस प्रकार का सेक्यूलरिज्म है? यह तो स्थाई रूप से हिन्दू-विरोधी धार्मिक भेद-भाव है , जो सहज न्याय के अलावा भारतीय संविधान के भी विरुद्ध है। सामान्य मानवीय समानता के विरुद्ध तो है ही। यह अन्याय राजसत्ता के बल से हिन्दू जनता पर थोपा गया है। इस पर कोई राजनीतिक दल आवाज नहीं उठाता।

कुछ लोग तर्क करते हैं कि हिन्दू मंदिरों , धार्मिक न्यासों पर राजकीय नियंत्रण संविधान-सम्मत है। संविधान की धारा 31.ए के अंतर्गत धार्मिक संस्थाओं, न्यासों की संपत्ति का अधिग्रहण हो सकता है। काशी विश्वनाथ मंदिर के श्री आदिविश्वेश्वर बनाम उत्तर प्रदेश सरकार (1997) के निर्णय में सुप्रीम कोर्ट ने कहा था , "किसी मंदिर के प्रबंध का अधिकार किसी रिलीजन का अभिन्न अंग नहीं है। " अतः यदि हमारे देश में राज्य ने अनेकानेक मंदिरों

का अधिग्रहण कर उस का संचालन अपने हाथ में ले लिया , तो यह ठीक ही है।

वस्तुतः आपत्ति की बात यह है कि संविधान की धारा 31(ए) का प्रयोग केवल हिन्दू मंदिरों, न्यासों पर हुआ है। किसी चर्च , मस्जिद या दरगाह की संपत्तियाँ कितने भी घोटाले , विवाद, हिंसा या गड़बड़ी की शिकार हों , उन पर राज्याधिकारी हाथ नहीं डालते। जबकि संविधान की धारा 26 से लेकर 31 तक, कहीं किसी रिलीजन का नाम लेकर छूट या विशेषाधिकार नहीं दिया गया है। सुप्रीम कोर्ट के निर्णयों में भी 'किसी धार्मिक संस्था' या 'ए रिलीजन' की बात की गई है। मगर व्यवहारतः केवल हिन्दू मंदिरों, न्यासों पर राज्य की वक्र-दृष्टि उठती रही है। चाहे बहाना सही-गलत कुछ हो।

इस प्रकार, स्वतंत्र भारत में केवल हिन्दू समुदाय है जिसे अपने धार्मिक-शैक्षिक-सांस्कृतिक संस्थान चलाने का वह अधिकार नहीं, जो अन्य को है। यह अन्याय हिन्दू समुदाय को अपने धर्म और धार्मिक संस्थाओं का , अपने धन से अपने धार्मिक कार्यों , विश्वासों का प्रचार-प्रसार करने से वंचित करता है। उलटे, हिन्दुओं द्वारा श्रद्धापूर्वक चढ़ाए गए धन का हिन्दू धर्म के शत्रु मतवादों को मदद करने में दुरुपयोग करता है। यह हमारी राज्यसत्ता द्वारा और न्यायपालिका के सहयोग से होता रहा है – इस अन्याय को कौन खत्म करेगा?

3 - शिक्षा में हिन्दू विरोध

एक केंद्रीय विश्वविद्यालय में एक पाठ्यक्रम बनाने की मीटिंग हो रही थी। उस में एक अध्याय का शीर्षक रखा गयाः भारत में मानवतावादी परंपरा। एक प्रोफेसर ने प्रस्तावित किया कि इस में लिखा जाए , 'बौद्ध, जैन, इस्लाम तथा सूफी विचार '। दूसरे ने चिंता की , "तब तो हिन्दू भी देना पड़ेगा"। वह हिन्दू जोड़ना नहीं चाहते थे, पर उन्हें लगा कि जब धर्मों का नाम लिखा जा रहा है तब स्वभावतः 'हिन्दू' भी जोड़ना जरूरी होगा। इस का उत्तर देते हुए प्रस्तावक प्रोफेसर ने आराम से उत्तर दिया , "हिन्दू धर्म या विचार जैसी कोई चीज नहीं थी।" दूसरे ने फिर शंका की, "मगर बौद्ध धर्म से पहले भारत में रहे चिंतन का तो उल्लेख करना होगा?" तब, पहले प्रोफेसर ने बेफिक्र उत्तर दिया, "अच्छा तो लिख दो, अरली इंडिया"।

दूसरा उदाहरण लीजिए। देश भर में बरसों से पढ़ाई जा रही एक पाठ्य-पुस्तक में वेदों के प्रति दुर्भावना भरी हुई है। कहीं उपेक्षा से लिखा है, 'ऋगवेद एक कर्मकांडीय पुस्तक है'। कहीं यह कि 'वेदों के प्रभुत्व को चुनौती दी गई'। जैसे, वेद कोई महान पुस्तक नहीं, कोई दुष्ट गिरोह थे! जहाँ-तहाँ ऐसे वाक्य, या शब्द छात्रों में हिन्दू ज्ञान के प्रति उपहासात्मक या नकारात्मक भाव भरते हैं। पाठ में छिपा लिया गया कि ऋगवेद विश्व की सब से प्राचीन और महान पुस्तक के रूप में विश्व में सामदृत है।

उसी पुस्तक में एक शीर्षक है, 'महाभारत का आलोचनात्मक अध्ययन'। चुन-चुन कर ऐसी बातें विचित्र भाव से दी गई हैं जिस से महाभारत का कुछ ज्ञान नहीं होता। केवल एक तिरस्कार भाव बनता है। उक्त पुस्तक को दर्जन भर से अधिक प्रोफेसरों ने मिल कर लिखा है, जिन में अधिकांश दिल्ली के केंद्रीय विश्वविद्यालयों के हैं। केवल इसी तरह की चीजों को बार-बार अबोध पाठकों में भरने का काम किया गया है। हिन्दू ज्ञान-परंपरा या धर्म की कहीं, कोई जानकारी उस में नहीं है।

यह दुराग्रह तब साफ दिखता है, जब वही पुस्तक अरब और इस्लाम का इतिहास बताती हैं। तब उस की शैली पलटकर जी-हुजूरी वाली हो जाती है। उन्हीं प्रोफेसरों ने विश्व इतिहास की पाठ्य-पुस्तक भी लिखी है। उस में पूरे दो बड़े अध्याय इस्लाम और उस के विस्तार पर गए हैं। श्रद्धा, प्रशंसा से ओत-प्रोत कुल मिलाकर चौवालीस पृष्ठ समर्पित हैं। आरंभ में ही लिखा है कि "हमारी समझ प्रोफेट की जीवनी, कुरान और हदीस पर आधारित है।" यानी जैसे इस्लामी मतवाद अपने को पेश करता है, उन प्रोफेसरों ने उसे अदब और अतिरिक्त अनुशंसा भाव से बच्चों तक पहुँचा दिया। कहीं उस 'आलोचनात्मक अध्ययन' का संकेत तक नहीं, जो महाभारत के लिए लिख कर घोषित किया था। 'वेदों के प्रभुत्व' की तरह कहीं कुरान के प्रभुत्व पर आक्रोश प्रेरित करने का जतन भी नहीं (जबकि यह किताब व मतवाद अपने को एकमात्र सत्य कहते हुए घोषित रूप से दुनिया पर राजनीतिक अधिपात्य समेत प्रभुत्व का रिलीजन 'दीने घालिब' कहता है।) उलटे अनगिनत तस्वीरों, रेखाचित्रों, मानचित्रों के माध्यम से इस्लाम की महानता और शान का इतना लंबा बखान है कि मानो विश्व इतिहास की स्कूली पुस्तक नहीं, बल्कि किसी काफिर को धर्मांतरित कराने के लिए लिखा गया तबलीगी साहित्य हो!

पुस्तक की यह श्रद्धा-भंगिमा बाबर के बारे में इस उक्ति से भी झलकती है कि उस ने "भारत में मुगल साम्राज्य की नींव रखी।" मानो किसी बगीचे या पुस्तकालय की नींव रखने जैसा उपयोगी या हानिरहित कार्य हो। उस के लिए हुए आक्रमण , जिहाद, सामूहिक संहार , मंदिरों का विध्वंस , जबरन धर्मांतरण, आदि मोटी बातो का भी उल्लेख नहीं। उलटे कहीं पाठक को संदेह न हो, इसलिए अलग से लिखा है कि "उन अभियानों में मारे गए लोगों की संख्या को बढ़ा-चढ़ाकर " बताया जाता है। स्वयं पुस्तक में कोई संख्या तो क्या, किसी मरने का संकेत तक नहीं किया। मानो मुगल साम्राज्य विस्तार कोई दांडी-यात्रा रही हो। पर किन्हीं अन्य स्रोत से पाठक को कोई सत्य न मिल जाए, इस की दवा कर दी गई!

निस्संदेह, यह कोई शैक्षिक लेखन नहीं जो दो प्रकार के ग्रंथों , विश्वासों, राज्य व्यवस्थाओं के बारे में दो विपरीत मानदंड अपनाए। हिन्दू इतिहास के प्रति यह आदतन निंदा , खिल्ली उड़ाना और शत्रुता भाव ही भारत की औपचारिक शिक्षा में है। हिन्दू-विरोधी राजनीतिक प्रचार को इतिहास कह कर पढ़ाया जाता है। यह हिन्दू नई पीढ़ियों के साथ भयंकर छल व विश्वासघात है। देश की जड़ में मट्ठा डालना है। लेकिन सभी राजनीतिक दल इसी को नतमस्तक चलाते रहे हैं। बल्कि हिन्दूवादी कहलाने वाले नेता गर्व से कहते हैं कि हम ने 'एक पन्ना भी नहीं बदला'। सब कुछ वैसे ही पढ़ा ही रहे हैं!

ध्यान दें, कि भारत में ऐसा हिन्दू-विरोधी जुल्म अंग्रेज औपनिवेशिक शासकों ने भी नहीं किया था। आप तुलना करके देख सकते हैं। तब पाठ्य-पुस्तकें हिन्दू ज्ञान और परंपरा को भी सहजता से रखती थी। यह स्वतंत्र भारत में हुआ कि वेद , उपनिषद, रामायण, महाभारत, जैसे कालजयी ग्रंथों शिक्षा से बाहर कर दिये गए। इन्हें न ज्ञान-भंडार का सम्मान है , न धर्म-पुस्तक का। यदि इन्हें कुरान, बाइबिल की तरह धर्म-पुस्तक मानते, तो इन के प्रति वामपंथी कुत्सा नहीं फैलाई जाती। राम , कृष्ण और उन से संबंधित स्थान, प्रसंग, आदि को दैवी अवतार का अखंड आदर रहता। मगर वह आदर यहाँ केवल प्रोफेट मुहम्मद और उन की पुस्तक के लिए सुरक्षित है।

दूसरी ओर, हिन्दू ग्रंथों को ज्ञान-पुस्तक की मान्यता भी छीन ली गई। स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक , इन्हें कहीं पढ़ा-पढ़ाया नहीं जाता। दर्शन , साहित्य, मनोविज्ञान, इतिहास, राजनीति, आदि सभी विषयों में सारी

अध्ययन-सूची पश्चिमी पुस्तकों से भरी है। उपनिषद दर्शन के विश्व-कोष हैं , किंतु भारत में दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी अरस्तू , कांट, मार्क्स, फूको, देरिडा, आदि पढ़ता है। उसी तरह , महाभारत राजनीति और नैतिकता की अदभुत पुस्तक होते हुए भी अछूत की तरह शिक्षा से बहिष्कृत है!

अर्थात्, जब वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, नीतिशतक, आदि को धर्म-पुस्तक का आदर देने का प्रसंग हो , तब इन्हें गल्प कहकर मनमानी आलोचना की जाती है। किंतु जब इन्हें ज्ञान-पुस्तक का महत्व देते शिक्षा में जोड़ना लाजिम हो , तब इन्हें धार्मिक कहकर शिक्षा से बाहर रखा जाता है। इस प्रकार, विश्व की सब से अनूठी ज्ञान-संपदा अपने ही देश में उपेक्षित है। अपनी मूल्यवान थाती का ऐसा निरादर पूरी दुनिया में कहीं नहीं हुआ।

भारत में हिन्दू समाज के साथ हो रहे इस दोहरे अन्याय को क्रिश्चियनिटी के उदाहरण से समझ सकते हैं। पश्चिमी समाज बाइबिल और जीसस प्रसंगों की आलोचनात्मक व्याख्या करता है। किंतु साथ ही क्रिश्चियनिटी का पूरा चिंतन, चर्च के विचार, भाषण, प्रस्ताव, आदि यूरोप की शिक्षा प्रणाली का अंग हैं। पश्चिमी विश्वविद्यालयों में क्रिश्चियन स्टडीज के विभाग, विशिष्ट विद्वत पत्रिकाएं वैसे ही सहज हैं जैसे इतिहास , राजनीति, भौतिकी, आदि की। क्रिश्चियनिटी संबंधी विमर्श , शोध, आदि के अकादमिक जर्नल ऑक्सफोर्ड, सेज जैसे प्रमुख अकादमिक प्रकाशनों से प्रकाशित होते हैं।

जबकि भारतीय विश्वविद्यालयों में धर्म-अध्ययन जैसा कोई विषय , विभाग ही शिक्षा से बहिष्कृत है! चाहे मैक्स वेबर जैसे महान विद्वान ने भगवदगीता को राजनीति और नैतिकता के अंतःसंबंध पर पूरे विश्व में एक मात्र सुसंगत पाठ्य-सामग्री कहा। किंतु यहाँ राजनीति शास्त्र के प्रोफेसर भी यह नहीं जानते। वस्तुतः क्रिश्चियनिटी की तुलना में हिन्दू ज्ञान-चिंतन गुण और मात्रा, दोनों में अतुलनीय रूप से गहरा है। सामाजिक अध्ययन (विज्ञान) का कोई विषय नहीं , जिस के अध्ययन में हिन्दू ग्रंथों से भारी सहायता न मिले। फिर भी , इसे समाज विज्ञान में अथवा स्वयं एक विषय के रूप में भारत में कोई अकादमिक स्थान नहीं है।

पूरे संदर्भ में देखें , तभी स्पष्ट होगा कि भारत में हिन्दू समाज और मनीषा के साथ मुगल राज जैसा जुल्म हो रहा है। निश्चय ही , ऐसा करने के लिए स्वतंत्र भारत के नेताओं ने जनता से कभी कोई जनादेश नहीं लिया है।

यह सब चुपचाप, एक वामपंथी, हिन्दू-विरोधी, शरीयत राज की मानसिकता से चल रहा है। जिस में हर 'वर्नाकुलर', 'नेटिव' या 'काफिर' चीज नीच मानी जाती है।

4 - शिक्षा व्यवसाय से हिन्दू बाहर किए जा रहे

राष्ट्रवादी कहलाने वालों की सत्ता में उन के वैचारिक समर्थकों , एक्टिविस्टों की विचित्र दुर्गति है। वे उसी तरह असहाय चीख-पुकार कर रहे हैं, जैसे कांग्रेसी या जातिवादियों के राज में करते थे। चाहे , वह मंदिरों पर राजकीय कब्जा हो , संविधान की विकृति हो , या शिक्षा-संस्कृति में हिन्दू विरोधी नीतियाँ हों। वे आज भी शिक्षा में हिन्दू विरोधी पक्षपात को दूर करने के लिए रो रहे हैं।

इस पक्षपात का उदाहरण 'शिक्षा का अधिकार कानून , 2009' (आर.टी.ई) भी है। जिस ने गरीब बच्चों को शिक्षा देने का भार केवल हिन्दुओं पर डाल दिया। अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थानों को इस से मुक्त रखा जिन की संख्या हजारों में है। उन्हें सरकारी अनुदान भी मिलता हो , तब भी उन पर आर.टी.ई लागू नहीं। जबकि हिन्दुओं द्वारा चलाए जा रहे स्कूल सरकारी अनुदान न भी लेते हों , तब भी उन्हें एक चौथाई सीटों पर निःशुल्क प्रवेश देना पड़ता है। यह फिर दोहरे जुल्म का उदाहरण है। हिन्दुओं द्वारा चलाए स्कूलों में चौथाई बच्चों का खर्च स्कूल को उठाना पड़ता है। गरीबों वाली सीटों पर भी प्रवेश तय करने का अधिकार स्कूल को नहीं , बल्कि राजकीय अधिकारियों को है। किसी कारण वे सीटें नहीं भरीं, तब भी उन्हें खाली रखना होगा।

इस के अलावा भी हिन्दुओं के स्कूलों पर सरकारी निर्देश , तरह-तरह के नियम बढ़ते गए हैं। उस में फीस संरचना , शिक्षकों के वेतन, छात्रों को प्रवेश की शर्तें, आदि तक तय करना शामिल है। यह खुला हिन्दू-विरोधी भेद-भाव है। क्योंकि यह सब स्कूल चलाने वाले का धर्म देख कर तय किया गया है। अरबपति क्रिश्चियन मिशनरी संस्थान भी उन नियमों से मुक्त हैं , जबकि साधारण हिन्दू स्कूल भी उन से बाध्य है। गोवा में आधे स्कूल मिशनरियों द्वारा संचालित हैं। केरल में उन की संख्या और अधिक है। उन के सामने हिन्दू स्कूलों का अस्तित्व ही खतरे में है।

आर.टी.ई के अन्य नियम भी हिन्दू स्कूलों पर चोट कर रहे हैं। जैसे , अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थान किसी को भी प्रवेश दे सकते हैं। वे अपने समुदाय को संपूर्ण आरक्षण दे सकते हैं। कुछ मिशनरी स्कूलों में इसे हिन्दुओं का धर्मांतरण कराने के लिए भी इस्तेमाल हो रहा है! यह कह कर कि 'सामान्य केटेगरी में सीट खाली नहीं, पर क्रिश्चियन वाली सीटें बची है। यदि क्रिश्चयिन बन जाओ तो एडमिशन मिल जाएगा।' यह पुरानी तकनीक है, जिसे गाँधीजी ने मिशनरियों की सेवा , अस्पताल, स्कूल, आदि को 'मछली फँसाने के लिए चारे' का नाम दिया था।

अल्पसंख्यक संस्थान किसी को भी शिक्षक नियुक्त कर सकते हैं , उन पर न्यूनतम योग्यता शर्ते नहीं है। शिक्षकों को कुछ भी वेतन दे सकते हैं , उन पर पे-कमीशन लागू नहीं है। जो हिन्दुओं द्वारा चलाए जा रहे स्कूलों पर है। यानी, हिन्दुओं को अधिकार नहीं रहा कि वे भी 'ऊँचे', 'साधारण' या 'सस्ते' स्कूल खोल सकें। जबकि अल्पसंख्यक संस्थानों को हरेक छूट है।

अभी दिल्ली में सरकार ने फीस बढ़ाने पर पाबंदी लगा दी है। गत महीनों में अनेक बच्चे कई महीने से फीस नहीं दे रहे। पर हिन्दुओं द्वारा चलाए जा रहे स्कूल उन का नाम नहीं काट सकते। सरकारी हुक्म है। एक हिन्दू संचालित स्कूल के व्यवस्थापक ने कहा , "इस महीने शिक्षकों-कर्मचारियों को वेतन देने के लाले पड़ गए हैं। " इस प्रकार, प्रवेश, नियुक्ति, आरक्षण, वेतन, फीस, आदि किसी चीज में अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थानों पर कोई सरकारी नियम बाध्यकारी नहीं। जबकि निम्नतम समुदाय के हिन्दू व्यक्ति/संस्था को भी छूट नहीं कि वह अपने समुदाय के लिए सीट सुरक्षित रखे। इस तरह , आर.टी.ई तरह-तरह से हिन्दुओं के विरुद्ध भेदभाव करता है। फलतः हिन्दुओं द्वारा चलाए जा रहे स्कूल बंद हो रहे हैं। अब तक लगभग चार हजार बंद हो चुके थे।

ध्यान रहे, अब शिक्षा लगभग पूरी तरह व्यवसाय में बदल चुका। ऐसी स्थिति में आर.टी.ई केवल हिन्दुओं पर लागू होना उन्हें इस व्यवसाय से बाहर करने का दबाव ही है। एक तरह का जजिया टैक्स , जो केवल हिन्दुओं पर है। क्या यह हिन्दुओं पर धर्मांतरित होने का दबाव या प्रलोभन नहीं , जैसा मुगल काल में था? क्योंकि जैसे ही कोई स्कूल या कॉलेज चलाने वाला हिन्दू धर्म बदल कर मुसलमान/ क्रिश्चियन हो जाए, वह अपने संस्थान में गरीबों के लिए

25 प्रतिशत निःशुल्क प्रवेश समेत सभी शर्तों , नियमों से मुक्त हो जाएगा! स्कूल की स्थिति के अनुसार यह राशि सालाना लाखों, करोड़ों में हो सकती है, जो किसी स्कूल या कॉलज को इसलिए देनी पड़ेगी , क्योंकि वह हिन्दू संचालित है!

इस पर सारे राजनीतिक दल , न्यायालय और मीडिया सभी चुप हैं। जबकि बीच-बीच में मानते हैं कि सेक्यूलरिज्म के नाम पर हिन्दुओं के विरुद्ध अन्याय हो रहा है। गत दशकों में सारी गड़बड़ी संविधान के अनुच्छेद 26-30 की विकृति करके की गई। इस की संविधान निर्माताओं ने कल्पना तक नहीं की थी। संविधान में 'अल्पसंख्यक' शब्द का कई बार प्रयोग है , जबकि 'बहुसंख्यक' का नहीं। अर्थ यह न था कि वे बहुसंख्यक को वंचित रखना चाहते थे। वे मानकर चल रहे थे कि बहुसंख्यकों को तो अधिकार रहेंगे ही! उन्हें चिंता थी कि 'अल्पसंख्यक' को भी सब के बराबर अधिकार मिले रहें। इसलिए अनुच्छेद 30 लिख कर यह पक्का किया गया। उस के उपबन्ध- 2 से स्पष्ट है कि संविधान की यही भावना थी।

किन्तु हिन्दू नेताओं, संगठनों की मूढ़ता और हिन्दू-विरोधियों की धूर्तता ने धीरे-धीरे उन अनुच्छेदों का यह अर्थ कर दिया कि अल्पसंख्यकों को ऐसे अधिकार हैं जो गैर-अल्पसंख्यकों यानी हिन्दुओं को नहीं हैं। किसी ने उस के विरुद्ध आवाज नहीं उठाई। वही आर.टी.ई कानून पर भी हुआ। दशकों से हिन्दू संगठन मानो अफीम खाकर पड़े हुए हैं। वरना अनुच्छेद 26-30 वाली विकृति जारी नही रह सकती थी। जिसे केवल प्रस्ताव पास कर सब के लिए समान घोषित करना है। मजे की बात यह कि ऐसा विधेयक मुस्लिम नेता सैयद शहाबुद्दीन ने दसवीं लोक सभा में अप्रैल 1995 में रखा था। उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 30 के उपबन्धों में जहाँ-जहाँ 'सभी अल्पसंख्यक' लिखा हुआ था, उसे बदल कर 'भारतीय नागरिकों का कोई भी वर्ग' करने का प्रस्ताव दिया था।

उस विधेयक (नं 36/1995) के उद्देश्य में शहाबुद्दीन ने लिखा था कि अभी अनुच्छेद 30 केवल अल्पसंख्यकों पर लागू किया जाता है। जबकि , "एक विशाल और विविधता भरे समाज में लगभग सभी समूह चाहे जिन की पहचान धर्म, संप्रदाय, फिरका, भाषा और बोली किसी आधार पर होती हो , व्यवहारिक स्तर पर कहीं न कहीं अल्पसंख्यक ही है , चाहे किसी खास स्तर

पर वह बहुसंख्यक क्यों न हो। आज विश्व में सांस्कृतिक पहचान के उभार के दौर में हर समूह अपनी पहचान के प्रति समान रूप से चिंतित है और अपनी पसंद की शैक्षिक संस्था बनाने की सुविधा चाहता है। इसलिए , यह उचित होगा कि संविधान के अनुच्छेद 30 के दायरे में देश के सभी समुदाय और हिस्से सम्मिलित किये जाएं।"

शहाबुद्दीन ने उस में यह भी लिखा था कि जो बहुसंख्यकों को प्राप्त नहीं, वैसी सुविधा अल्पसंख्यकों को देने के लिए अनुच्छेद 30 की निन्दा होती रही है। अतः बहुसंख्यकों को भी अपनी शैक्षिक संस्थाएं बनाने , चलाने का समान अधिकार मिलना चाहिए। यह हिन्दू नेताओं की अचेतावस्था का प्रमाण है कि वह विधेयक यूँ ही पड़ा-पड़ा खत्म हो जाने दिया गया!

यह हमारे राजनीतिक दलों का दिवालियापन है कि नब्बे प्रतिशत हिन्दुओं से भरे दल व संसद 1975 ई. से ही लगातार नए , नए हिन्दू-विरोधी संशोधनों, कानूनों को पास करते रहे हैं। आर.टी.ई. का बेखटके पास होना उसी क्रम में था। किसी ने इस का मुगलिया , जजिया-नुमा भेद-भाव देखने की फिक्र नहीं की। वही हैरत आज भी कि कथित हिन्दूवादी सत्ताधारी भी इसे जारी रखे हुए हैं। हिन्दू समाज के विरुद्ध धार्मिक , शैक्षिक, सांस्कृतिक भेद-भाव पर वे गाँधीजी के बंदरों जैसी मुद्रा में हैं। (समाप्त)